श्रावण मास, कृष्ण पक्ष 1 वर्ष, अंक 70, पृष्ठ 4, मूल्य 1.00

अखण्ड भारत सन्देश

www.akhandbharatsandesh.net

प्रयागराज से प्रकाशित

नगर संस्करण प्रयागराज गुरूवार, 15 अक्टूबर, 2020

विश्व निर्माण एवं मानव विकास को द्रुतगति प्रदान करने हेतु क्रियायोग आश्रम एवं अनुसंधान संस्थान की एक अनुपम भेंट

तेलंगाना और आंध्र में बारिश से तबाही, 25 की मौत पीएम ने मुख्यमंत्रियों को दिया हर मदद का भरोसा

नई दिल्ली, एजेंसियां। तेलंगाना और आंध्र प्रदेश में भारी बारिश ने लोगों पर जमकर कहर बरपाया है। दोनों राज्यों में लगभग 25 लोगों की मौत हो गई है। सबसे ज्यादा 15 मौतें तेलंगाना की राजधानी हैदराबाद में हुई हैं। आंध्र प्रदेश में 10 लोगों की जान गई है। इस बीच प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने बुधवार को तेलंगाना के मुख्यमंत्री के. चंद्रशेखर राव और आंध्र प्रदेश के सीएम वाईएस जगन मोहन रेड्डी से बात की।

प्रधानमंत्री मोदी ने ट्वीट किया, 'तेलंगाना के सीएम केसीआर गारू और आंध्र प्रदेश के सीएम जगन गारू से उनके राज्यों में हो रही भारी बारिश की वजह से पैदा हुए हालात को लेकर बातचीत हुई। मैंने उन्हें राहत और बचाव के कार्यों में केंद्र सरकार की ओर से हर संभव मदद देने का भरोसा दिया है। भारी बारिश से प्रभावित लोगों के प्रति सहानुभूति।'

राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने तेलंगाना की राज्यपाल तमिलसाई सुंदरराजन और मुख्यमंत्री के चंद्रशेखर राव से बातचीत की और लगातार हो रही भारी बारिश से जान-माल के नुकसान पर चिंता जताई। राष्ट्रपति ने ट्वीट कर कहा, 'तेलंगाना की राज्यपाल तमिलसाई और मुख्यमंत्री के चंद्रशेखर राव के साथ बातचीत की। संकट की इस घड़ी में देश तेलंगाना के लोगों के साथ एकजुटता के साथ खड़ा है।'

प्राप्त जानकारी के मुताबिक, भारी बारिश से तेलंगाना के कई जिलों में सड़कें पानी से भर गई हैं। हैदराबाद का सबसे बुरा हाल है। यहां पानी के तेज बहाव से कई स्थानों पर जमीन खिसक गई है। राज्य सरकार ने गुरुवार तक सभी निजी संस्थानों को बंद करने का आदेश दिया है। लोगों को फिलहाल घरों में रहने की सलाह दी गई है। शहरी विकास मंत्री केटी रामाराव और पशुपालन मंत्री तलसानी श्रीनिवास यादव ने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ आपात बैठक कर बचाव एवं राहत कार्यों की समीक्षा की।

हैदराबाद के गगन पहाड़ क्षेत्र में दीवार गिरने से एक बच्चे सहित परिवार के तीन सदस्यों की मौत हो गई। जबकि, चंद्रींगुट्टा पुलिस स्टेशन की सीमा पर दो घरों की दीवारों के गिरने में एक बच्चे सहित दस लोगों की मौत हो गई। एक अन्य घटना में घर की छत गिरने से 40 वर्षीय महिला और उसकी बेटी की मौत हो गई। ग्रेटर हैदराबाद नगरपालिका अंतर्गत आने वाले कई इलाकों में भारी बारिश से जलजमाव हो गया है। राज्य के मुख्य सचिव सोमेश कुमार ने सभी जिलों को हाई अलर्ट पर रहने का निर्देश दिया है। खतरे के मद्देनजर हैदराबाद के कई इलाकों में बिजली आपूर्ति को रोक दिया गया है।

विजयवाड़ा-हैदराबाद राजमार्ग पर में ट्रैफिक जाम देखा गया। बताया गया है कि हैदराबाद में पिछले 20 साल से ऐसी भारी बारिश नहीं हुई थी। हैदराबाद की हुसैन सागर झील अपने उच्चतम स्तर पर पहुंच चुकी है। शहर के कई निचले इलाकों में पानी भर गया है। यहां कई घरों में भी पानी भर चुका है। खैरातााबाद, टोली चौकी, बोरबंदा, सिकंद्राबाद, अंबेरपेट, एल्बीनगर, वनस्थलीपुरम, हयातनगर और अब्दुल्लापुर इलाकों में तेज बारिश से स्थिति काफी खराब है।

वहीं आंध्र प्रदेश में पिछले 48 घंटे से हो रही बारिश से काफी नुकसान हुआ है। राज्य में लगभग 10 लोगों की मौत हो गई है। कई स्थानों पर बिजली की आपूर्ति को रोक दिया गया है। बारिश से कृष्णा नदी फिर से उफन गई है। मुख्यमंत्री वाईएस जगन मोहन रेड्डी ने उच्च-स्तरीय बैठक कर स्थिति की समीक्षा की। उन्होंने पीड़ित परिवारों को तुरंत मुआवजा देने का निर्देश दिया है।

यूपी के पूर्व मुख्यमंत्री पत्नी सहित मेदांता अस्पताल में भर्ती

लखनऊ, जेएनएन। यूपी के पूर्व मुख्यमंत्री और समाजवादी पार्टी के संस्थापक मुलायम सिंह यादव की कोरोना रिपोर्ट पॉजिटिव आई है। आज दोपहर उनके बेटे पूर्व मुख्यमंत्री अखिलेश यादव उनको लेकर गुड़गांव के मेदांता अस्पताल गए थे, जहां जांच में वह कोरोना पॉजिटिव मिले। अखिलेश यादव उपचुनाव को लेकर प्रदेश कार्यालय में चल रही मीटिंग को छोड़ अचानक मुलायम सिंह यादव से मिलने पहुंचे थे। मेदांता अस्पताल के डॉक्टरों ने बताया कि उन्हें सांस लेने में दिक्कत हो रही थी, जिसके बाद उन्हें यहां लाया गया था। मुलायम सिंह यादव की कोरोना जांच कराई गई, जिसमें उनकी रिपोर्ट पॉजिटिव आई है। समाजवादी पार्टी के संरक्षक व उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव पिछले काफी समय से बीमार चल रहे हैं। इस कारण उन्हें कई बार अस्पताल में भी भर्ती करवाया जा चुका है।

समाजवादी पार्टी के संरक्षक व उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव एवं उनकी पत्नी साधना को मेदांता अस्पताल में बुधवार रात लगभग साढ़े नौ बजे भर्ती कराया गया है। दोनों कोरोना पाजिटिव हैं। इनके तीन घरेलू सहायकों को भी भर्ती कराया गया है। वे भी कोरोना पाजिटिव हैं। सीनियर फिजिशियन डा. सुशीला कटारिया की देखरेख में सभी का इलाज शुरू कर दिया गया है। माननीय नेताजी का स्वास्थ्य स्थिर है। आज कोरोना पॉज़िटिव होने पर गुड़गांव के मेदांता में उन्हें स्वास्थ्य-लाभ के लिए भर्ती कराया था। हम वरिष्ठ डॉक्टरों के निरंतर संपर्क में हैं और समय-समय पर सूचित करते रहेंगे।

'समाजवादी पार्टी संस्थापक नेताजी मुलायम सिंह यादव की कोरोना टेस्ट रिपोर्ट पॉजिटिव आने के उपरांत चिकित्सकों की देख रेख जारी है। फिलहाल उनमें कोरोना के एक भी लक्षण नहीं हैं।

बता दें कि यूपी में कोरोना वायरस से संक्रमित मरीजों के स्वस्थ होने की रफ्तार और तेज हो गई है। बुधवार को प्रदेश का रिकवरी रेट 90.24 फीसद पहुंच गया। अब तक मिले कुल 4.45 लाख रोगियों में से चार लाख से अधिक मरीज स्वस्थ हो चुके हैं। बीते 24 घंटे में कोरोना से संक्रमित 2,778 नए रोगी मिले और इससे ज्यादा 3,736 मरीज स्वस्थ हुए। वहीं 41 और लोगों की मौत के साथ अब तक कुल 6,507 लोगों की जान यह खतरनाक वायरस ले चुका है। अब एक्टिव केस घटकर 36,898 रह गए हैं। अपर मुख्य सचिव चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अमित मोहन प्रसाद ने बताया कि बीते 26 दिनों में 31,337 एक्टिव केस घटे हैं। 17 सितंबर को एक्टिव केस पीक पर थे और इनकी संख्या 68,235 पहुंच गई थी, मगर इसके बाद से लगातार इसमें कमी आ रही है। प्रदेश में अब तक 13.33 करोड़ लोगों की स्क्रीनिंग की जा चुकी है।

यूपी विधानभवन के बाहर खुद को आग के हवाले करने वाली महिला की मौत, पूर्व राज्यपाल का बेटा हिरासत में

लखनऊ, जेएनएन। महाराजगंज निवासी जिस महिला अंजली? ने मंगलवार को विधानभवन के पास खुद को आग के हवाले किया था, उसकी बुधवार शाम इलाज के दौरान सिविल अस्पताल में मौत हो गई। शाम सवा सात बजे के करीब सिविल अस्पताल के डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। घटना के तुरंत बाद ही महिला को सिविल अस्पताल में भर्ती कराया गया था, जहां सीएमएस डॉ एसके नंदा ने महिला के 90 प्रतिशत जलने की बात कहते हुये उसकी हालत बेहद नाजुक बताई थी।

आत्मदाह के मामले में पूर्व राज्यपाल सुखदेव प्रसाद के बेटे आलोक को हिरासत में लेकर महाराजगंज और लखनऊ पुलिस पूछताछ कर रही है। सुखदेव प्रसाद का बेटा मूलरूप से महाराजगंज का ही रहने वाला है। यहां गोमतीनगर में रहता है। उससे लखनऊ में ही पूछताछ हो रही है। पुलिस छानबीन में सामने आया है सुखदेव प्रसाद के बेटे समेत कुछ अन्य लोगों से महिला घटना से पहले संपर्क में थी और उन्हीं लोगों के उकसाने पर इस घटना को अंजाम दिया। ऐसे लोगों की गिरफ्तारी भी संभव है। डीसीपी सेंट्रल सोमेन वर्मा ने बताया कि जो लोग महिला से पूर्व संपर्क में थे और घटना की उन्हें पहले से जानकारी थी, ऐसे सभी लोगों से पूछताछ की जा रही है। ऐसे लोगों पर मुकदमा दर्जकर आगे की कार्रवाई भी की जाएगी। गौरतलब है कि विधानभवन के पास मंगलवार को महिला ने खुद पर केरोसिन डालकर आग के हवाले कर दिया था। उसे आग की लपटों में घिरा देखकर मौके पर मौजूद लखनऊ पुलिसकर्मियों ने कपड़े से आग बुझाकर महिला को कंबल में लपेटकर सिविल अस्पताल पहुंचाया था।

मूलरूप से छत्तीसगढ़ निवासी अंजलि तिवारी ने दो वर्ष पूर्व घुघली थानाक्षेत्र के पचरूखिया निवासी अखिलेश तिवारी से शादी की थी। इस दौरान दोनों में विवाद हुआ और अंजली अलग रहने लगी। इसके बाद अंजली ने आसिफ से निकाह कर लिया। अंजलि ने अपना धर्म परिवर्तन कराकर नाम भी आयशा कर लिया। बाद में आसिफ सऊदी अरब भाग गया। अंजलि ने मामले की शिकायत महाराजगंज पुलिस से की, लेकिन पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की। 13 अक्टूबर को आत्मदाह की बात को लेकर उसने महाराजगंज पुलिस नोटिस दिया था। उसकी तलाश में महिला एसओ मनीषा सिंह को लखनऊ भेजा गया था। इंस्पेक्टर हजरतगंज अंजनी कुमार पांडेय ने बताया कि महिला एसओ ने घटना से 15 मिनट पहले ही उनसे संपर्क किया था, पुलिस को तुरंत अलर्ट किया गया, लेकिन फिर भी अंजलि ने खुद को आग के हवाले कर लिया। घटना के बाद महाराजगंज पुलिस की घोर लापरवाही और चूक उजागर हो चुकी है, अगर वक्त रहते वहां की पुलिस ने कार्रवाई की होती या लखनऊ पुलिस से संपर्क किया होता तो अंजलि की जान भी बचाई जा सकती थी।

स्कूलों में खत्म होगी रटने-रटाने की संस्कृति, कैबिनेट ने दी करोड़ो रुपये के स्टार्स प्रोजेक्ट को मंजूरी

स्टार्स प्रोजेक्ट के तहत शुरू होने वाले अच्छे कामों और पहलों को बाकी सभी राज्यों में भी लागू कराया जाएगा

जागरण ब्यूरो, नई दिल्ली। नई शिक्षा नीति को तेजी से जमीन पर उतारने में जुटी केंद्र सरकार ने 'स्टार्स' नाम से एक नए प्रोजेक्ट को मंजूरी दी है। इस प्रोजेक्ट का लक्ष्य स्कूलों से रटने-रटाने वाली संस्कृति को पूरी तरह खत्म करना है। इसकी जगह छात्रों को ज्ञान आधारित शिक्षा से जोड़ा जाएगा। साथ ही परीक्षाएं भी इसी आधार पर ली जाएंगी।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में बुधवार को हुई कैबिनेट की बैठक में स्कूली शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाले स्टार्स (स्ट्रेंथनिंग टीचिंग-लर्निंग एंड रिजल्ट्स फॉर स्टेट्स) को मंजूरी दी गई। केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री प्रकाश जावडेकर ने बताया कि इस पूरे प्रोजेक्ट पर 5,718 करोड़ रुपये खर्च किए जाएंगे। इसमें करीब 3,700 करोड़ की मदद विश्व बैंक देगा, जबकि बाकी के करीब दो हजार करोड़ राज्यों से लिए जाएंगे। फिलहाल छह राज्यों में इस प्रोजेक्ट को शुरू किया जाएगा जिनमें हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, केरल और ओडिशा शामिल हैं। इसके साथ ही एशियाई विकास बैंक (एडीबी) की मदद से पांच और राज्यों में इस प्रोजेक्ट को शुरू करने का प्रस्ताव भी किया गया है इनमें गुजरात, तमिलनाडु, उत्तराखंड, झारखंड और असम शामिल हैं। फिलहाल इस पूरे प्रोजेक्ट का उद्देश्य नई शिक्षा नीति के तहत स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए किए गए प्रस्तावों को लागू करना है।

स्टार्स प्रोजेक्ट के तहत शुरू होने वाले अच्छे कामों और पहलों को बाकी सभी राज्यों में भी लागू कराया जाएगा। मालूम हो कि केंद्र सरकार का फोकस इस समय शिक्षा नीति पर तेजी से अमल को लेकर है। वैसे भी इस नीति के तहत 2022 से स्कूलों में नए पाठ्यक्रम से पढ़ाई होनी है। इससे पहले सरकार स्कूलों में गुणवत्ता को एक मजबूत आधार देना चाहती है।

स्कूलों की शुरूआती बाल शिक्षा और इसके शिक्षण में जुटे शिक्षकों को सशक्त बनाना, पढ़ाई-लिखाई की गुणवत्ता और आकलन प्रणालियों में सुधार लाना, शिक्षक के विकास और स्कूल के नेतृत्व के माध्यम से क्लास रूम में सुधार और सशक्त बनाना, तकनीक से जोड़ना, स्कूलों से वंचित बच्चों को मुख्यधारा में लाना, करियर मार्गदर्शन तथा परामर्श देना, इंटर्नशिप देकर स्कूलों में व्यवसायिक शिक्षा को सशक्त बनाना। माना जा रहा है कि इन सारी पहलों से स्कूलों से जुड़े सूचकांक में सुधार आएगा। यानी किसी क्लास के बच्चों को क्या-क्या आना चाहिए आदि, इस पहल से मजबूत होगी।

मध्य प्रदेश में कल से खुलेंगे कुछ सिनेमाघर, थियेटर और मल्टीप्लेक्स

भोपाल, प्रेट्र। कोरोना वायरस महामारी के कारण बीते करीब 6 महीनों से बंद सिनेमाघरों को अब खोलने की तैयारी चल रही है। कोविड-19 के बीच नए नियमों, गाइडलाइंस और सुरक्षा के साथ 15 अक्टूबर से देश भर में सिनेमाघरों को खोलने के आदेश दिए गए हैं। कोरोना में दर्शकों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए सिर्फ 50 प्रतिशत सीटों के लिए ही टिकट बिक्री की अनुमति दी है। इसको लेकर मध्य प्रदेश में कुछ सिनेमाघरों को फिर से खोला जा रहा है। यहां गुरुवार से फिल्मों की स्क्रीनिंग शुरू करने की तैयारी है। हालांकि सिनेमाघरों के मालिकों का कहना है कि व्यवसाय को रफ्तार पकड़ने में समय लगेगा।भोपाल सिने ओनर्स एसोसिएशन के सचिव एजाजुद्दीन ने बुधवार को समाचार एजेंसी पीटीआई को बताया कि दर्शकों की अनुपलब्धता के कारण मल्टीप्लेक्स को छोड़कर, कोई अन्य नहीं सिनेमा हॉल 15 अक्टूबर को राज्य की राजधानी भोपाल में फिर से नहीं खोला जाएगा। केंद्र ने सिनेमा हॉल और मल्टीप्लेक्स को उनकी बैठने की क्षमता का 50 प्रतिशत तक फिर से खोलने की अनुमति दी है। इस पर थिएटर मालिकों का कहना है कि यह उनके व्यावसायिक हित में नहीं है। ऐजाजुद्दीन ने कहा कि इस अवधि के दौरान, कोई भी निमार्ता जोखिम नहीं लेगा। उनकी फिल्म रिलीज हो रही है। इसलिए, हमें पुरानी फिल्मों से शुरूआत करनी होगी जिसके लिए दर्शक उपलब्ध नहीं होंगे। उन्होंने कहा कि हमने सरकार से भी मांग की कि हमारी पिछले छह महीनों के बिजली बिलों को माफ कर दिया जाए।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी 16 अक्टूबर को जारी करेंगे 75 रुपये का स्मारक सिक्का,

नई दिल्ली, एएनआइ। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी 16 अक्टूबर को 75 रुपये का स्मारक सिक्का जारी करेंगे। खाद्य और कृषि संगठन के साथ भारत के संबंध को चिह्नित करने के लिए इस सिक्के को जारी किया जाएगा। दरअसल, 16 अक्टूबर को खाद्य और कृषि संगठन की 75वीं वर्षगांठ पर यह सिक्का जारी किया जाएगा। भारत के एफएओ के साथ संबंध को चिह्नित करने के लिए यह सिक्का जारी किया जाएगा। इस इवेंट में सबसे ज्यादा कृषि और पोषण को प्राथमिकता दी जाएगी। इसमें देश में मौजूद कुपोषण को पूरी तरह से समाप्त करने के संकल्प लिया जाएगा। यह कार्यक्रम देश भर के आंगनवाड़ियों, कृषि विज्ञान केंद्रों, जैविक और बागवानी मिशनों के सामने होगा। पीएमओ द्वारा जारी किए गय बयान के मुताबिक, कमजोर वर्गों और जनता को आर्थिक और पोषक रूप से मजबूत बनाने में एफएओ की यात्रा अतुलनीय रही है। भारत के एफएओ के साथ काफी अच्छे संबंध रहे हैं। जारी किए गए बयान में बताया गया कि भारतीय सिविल सेवा अधिकारी डॉ। बिनय रंजन सेन 1956-1967 के दौरान FAO के महानिदेशक थे।

जुर्माने के खिलाफ बिल्डर पहुंचा सुप्रीम कोर्ट

नई दिल्ली, प्रेट्र। सुप्रीम कोर्ट ने टीडीआइ इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड की याचिका पर हरियाणा सरकार एवं अन्य को नोटिस जारी किया है। टीडीआइ इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड ने अपनी अपील में सोनीपत इलाके में पर्यावरणीय मानकों के उल्लंघन के लिए 10 करोड़ जुमार्ना लगाने वाले एनजीटी के आदेश को चुनौती दी है।

जस्टिस एल. नागेश्वर राव, जस्टिस हेमंत गुप्ता और जस्टिस अजय रस्तोगी की तीन सदस्यीय पीठ ने हरियाणा सरकार, राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और उस एनजीओ को नोटिस जारी किया है, जिसकी याचिका पर नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (ठक्कछ) ने यह आदेश दिया था। एनजीटी ने 23 अक्टूबर, 2019 को सोनीपत इलाके में छह बिल्डरों पर पर्यावरण मानकों का उल्लंघन करने के कारण 22.5 करोड़ रुपये का जुमार्ना लगाया था। ट्रिब्यूनल ने कहा था कि यह उल्लंघन गंभीर है और इस दृष्टि से मुआवजा ऐसा होना चाहिए, जिससे अन्य लोग सबक लें।

अपने अंतरिम आदेश में एनजीटी ने टीडीआइ इंफ्रास्ट्रक्चर लि. पर (किंग्सबेरी अपार्टमेंट्स के लिए) 10 करोड़ रुपये और टीडीआइ के सेक्टर-60 में माय फ्लोर प्रोजेक्ट, टस्कन सिटी, सीएमडी बिल्ट-टेक प्राइवेट लिमिटेड, पार्कर एस्टेट डेवलपमेंट प्राइवेट लिमिटेड और नारंग कंस्ट्रक्शन एंड फाइनांसर्स प्राइवेट लिमिटेड पर ढाई-ढाई करोड़ रुपये का पर्यावरण क्षतिपूर्त जुमार्ना लगाया था।

एनजीटी ने केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय और आइआइटी-दिल्ली के प्रतिनिधियों की एक संयुक्त समिति गठित की थी, जिसे इन बिल्डरों से वसूले जाने वाले वास्तविक मुआवजे का निर्धारण करना था।

इन बिल्डरों पर पर्यावरण मानकों का उल्लंघन करने का आरोप लगाते हुए हरियाणा के एनजीओ किसान उदय समिति ने एनजीटी में शिकायत दायर कर इनके खिलाफ कार्रवाई करने की मांग की थी।

केंद्रीय सशस्त्र सुरक्षाबलों को भी मिलेगा आयुष्मान भारत योजना का लाभ

नई दिल्ली, एएनआइ। केंद्रीय सशस्त्र पुलिस बल (सीएपीएफ) के कर्मियों को जल्द ही आयुष्मान भारत प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना के तहत स्वास्थ्य बीमा का लाभ मिलेगा। एक सरकारी अधिकारी ने कहा कि केंद्र सरकार के कर्मचारियों को आयुष्मान भारत के तहत स्वास्थ्य लाभ प्रदान करने का यह अपनी तरह की पहली पहल है। इस पहल का लक्ष्य सीएपीएफ कर्मचारियों और उनके आश्रितों को मुफ्त में चिकित्सा सुविधा मुहैया कराना है।

अधिकारी ने कहा कि असम राइफल्स, सीमा सुरक्षा बल, सशस्त्र सीमा बल, केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल, केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल, राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड और भारत-तिब्बत सीमा पुलिस के कर्मचारियों और उनके आश्रितों को इस योजना का लाभ मिलेगा। सीएपीएफ कर्मियों को आयुष्मान भारत योजना के तहत लाए जाने से उनको और उनके आश्रितों को इस पैनल में शामिल अस्पतालों में चिकित्सा सुविधा मिल सकेगी। शुरूआती दौर में हरियाणा के गुरुग्राम में सभी बलों के लिए पायलट परियोजना चलाई जा रही है। बाद में इसका विस्तार पूरे राज्य में किया जाएगा।

केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री हर्षवर्धन ने संसद के मानसून सत्र के दौरान कहा था कि आयुष्मान भारत-प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (एबी-पीएमजेएवाई) के तहत 1.26 करोड़ से अधिक लाभार्थियों को मुफ्त इलाज मुहैया कराया गया। उन्होंने बताया था कि 2018 में योजना के शुरू होने के बाद से अब तक 12.5 करोड़ ई-कार्ड जारी किए गए हैं।

एबी-पीएमजेएवाई के दो साल पूरे होने पर 'आरोग्य मंथन' 2.0 की अध्यक्षता कर रहे हर्षवर्धन ने कहा कि योजना के तहत आर्थिक और सामाजिक रूप से कमजोर 53 करोड़ भारतीयों को लाया गया है। इसके तहत हर पात्र परिवार को पांच लाख रुपये का स्वास्थ्य बीमा कवर मिला हुआ है। केंद्रीय मंत्री ने कहा कि इस योजना के तहत अब तक 15,500 करोड़ रुपये से अधिक का इलाज मुहैया कराया जा चुका है। इसकी वजह से न सिर्फ करोड़ों लोगों की जान बची है, जबकि महंगे इलाज की वजह से कई घर भी उजड़ने से बच गए हैं।

ग्रामीण अंचल

प्रयागराज गुरूवार, 15 अक्टूबर, 2020

संक्षेप समाचार

प्रयागराज में अतीक अहमद के एक और मकान की होगी कुर्की

प्रयागराज। माफिया व पूर्व सांसद अतीक अहमद पर प्रशासन का शिकंजा और कसेगा। अपराध जगत की काली कमाई से खड़े किए गए नीमसराय के मकान को कुर्क करने का आदेश प्रशासन ने जारी कर दिया है। जिलाधिकारी भानु चंद्र गोस्वामी ने धूमनगंज थाने के प्रभारी को कुर्की का प्रशासक नियुक्त कर 26 अक्टूबर तक कार्रवाई कर रिपोर्ट देने के लिए आदेश जारी किया है। माफिया अतीक अहमद की मुश्किलें बढ़ती जा रही हैं। पिछले कुछ दिनों में तमाम संपत्तियों को जमींदोज किया जा चुका है। बुधवार को स्थानीय प्रशासन ने एक और संपत्ति को कुर्क करने का आदेश जारी किया है। जेड नीम सराय और नीम सराय आवास योजना में बनाया गया मकान माफिया अतीक अहमद के नाम पर है। डीएम ने डीआईजी की आख्या के आधार पर जांच के उपरांत इसे कुर्क करने का आदेश दिया है। आख्या में कहा गया है कि माफिया ने यह संपत्ति समाज विरोधी कृत्यों में लिप्त होकर अवैध तरीके से अर्जित की गई काली कमाई से खड़ी की है। इसकी रिपोर्ट 12 अक्टूबर को डीएम को दी गई थी, रिपोर्ट के आधार पर बुधवार को आदेश जारी हुआ है।

एआईकेएमएस ने बारा तहसील में किया विरोध प्रदर्शन

घूरपुर। अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा के नेतृत्व में सैकड़ों किसानों व मजदूरों ने बुधवार के दिन बारा तहसील पर किसानों के लिए पारित तीन कानूनों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन कर नारे लगाए।किसान विरोधी, मजदूर विरोधी, विदेशी कम्पनी पक्षधर, कारपोरेट पक्षधर खेती के 3 कानून का विरोध किया ।और भारत सरकार से मांग की कि इसे वापस लिया जाए। इस आशय का ज्ञापन नायब तहसीलदार रविकान्त द्विवेदी को सौपा।

नेताओं ने बताया कि इन 3 कानूनों के अमल के बाद विदेशी कम्पनियां, बड़े प्रतिष्ठान अनाज व अन्य फसलों के व्यापार में अपनी मंडियां स्थापित कर लेंगे, किसानों से ठेका खेती कराएंगे, लागत के सामान की बिक्री, भंडारण, शीत भंडारण, परिवहन, फसल व प्रसंस्कृत फसल की बिक्री पर अपना प्रभुत्व जमाएंगे। वे ये सारा कार्य तरह-तरह के बिचैलियों के माध्यम से करेंगे, जैसे - ठेके की खेती के लिए जमीन एकत्र करना व बिक्री के लिए फसल एकत्र करना एग्रीगेटर करेगा। लागत की आपूर्ति बिचैलिया करेगा। फसल की गुणवत्ता पारखी तय करेगा और निजी

तहसीलदार को ज्ञापन सौंपते हुए

मंडिया अपना अलग से शुल्क वसूलेंगी। किसान को अपनी जमीन गिरवी रखनी पड़ेगी, मंहगी लागत खरीदनी पड़ेगी और खेती करने व फसल की बिक्री की स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी।

ये तीन कानून कारपोरेट को खाने की जमाखोरी व कालाबाजारी करने की पूरी छूट देगा, क्योंकि इन कानूनों के तहत भारत सरकार खाने को आवश्यक वस्तु नहीं गिनेगी।

विरोधकताओं ने उ.प्र. सरकार को एक अलग ज्ञापन सौंपा, जिसमें मांग की कि गांव में सभी को मनरेगा के तहत पूरे महीने न्यूनतम मजदूरी दर पर काम दिया जाए और राशन में सभी को 15 किलो अनाज, 1 किलो दाल, तेल, चीनी प्रति यूनिट दिया जाए।

ज्ञापन मं कहा गया कि उ0प्र0 सरकार ने बड़े व्यापारियों व बालू माफियाओं के पक्ष में एक बेतुका और गैरकानूनी आदेश 24 जून 2019 को

एसडीएम की शिकायत बार संघ ने किया डीएम से, दिया ज्ञापन

करछना। बीते तीन दिनो से एसडीएम के खिलाफ करछना के अधिवक्ताओ का हडताल जारी रखते हुए तहसील मे कोई काम-काज नही हो सका अधिवक्ता व एसडीएम के बीच तना तनी को लेकर तहसील का काम पूरी तरह से प्रभावित होने के कारण फरियाद लेकर आये लोगो निराशा ही हाथ लगी।बता दे कि शनिवार को एसडीएम व तहसील के एक अधिवक्ता से थाना दिवस पर जमीन के मामले को लेकर फरियाद करने पर एसडीएम द्वारा पूर्व बार अध्यक्ष करछना को अमर्यादित शब्दो का प्रयोग करने से बार सघ के अधिवक्ता एसडीएम के इस रवैये से सोमवार से तहसील मे कार्य से विरत रहते हुए धरना प्रदर्शन एव एसडीएम के तबादले पर अडे हुए है।जिसको लेकर बुधवार को अधिवक्ताओ का प्रतिनिधि मड़ल जिलाधिकारी प्रयागराज से मिलकर ज्ञापन दिया और एसडीएम के तबादले की माग की।

पारित किया था, जिसमें केवल जमुना नदी व केवल प्रयागराज में पर्यावरण रक्षा के नाम पर नाव से बालू खनन पर रोक लगाई थी, ताकि माफिया के लोडर चल सकें। उन्होंने कहा कि सरकार रवन्ने के सरकारी रेट 65 रु0 प्रति घनमीटर की जगह 700 रु0 घन मीटर की वसूली करा रही है जिससे बालू की बिक्री प्रभावित है और यह अतिरिक्त कमाई पुलिस अफसरों व भाजपा नेताओं की जेब में जा रही है। उन्होंने मांग की कि इस आदेश को वापस लेकर नाव से बालू खनन का कार्य सुचारू रूप से चलाया जाए। प्रदर्शन में भाग लेने वालों में राज कुमार पथिक,का0 हीरालाल, राम कैलाश कुशवाहा, सुरेश निषाद, विनोद निषाद, पप्पू निषाद, मोतीलाल, रामबरन, सतीश पटेल, भैरोलाल पटेल, रामराज, रोहित आदि दर्जनों लोग शामिल थे।

जमीन विवाद में दो पक्षों में चटकी लाठियां आधा दर्जन घायल

घूरपुर। क्षेत्र के भीटा गांव में बुधवार के दिन जमीनी विवाद को लेकर दो पक्षों में लाठियां चटक गई ।जिसमे दोनो पक्ष के आधा दर्जन लोग घायल हो गए। थाने पहुंच दोनो पक्ष ने एक दूसरे के ऊपर आरोप लगाते हुए शिकायती पत्र दिया है । पुलिस दोनों पक्ष के घायलों को इलाज के लिए भेज केस दर्ज कर लिया है । घूरपुर थाना क्षेत्र के भीटा गांव निवासी सिंधोरी लाल व भैयन भारतीय के बीच जमीन को लेकर बुधवार के दिन बात चीत हो रही थी ।इसी दोनो पक्ष तैस में आ गए और दोनो पक्षों के लोग एकत्र हो लाठी डंडे से एक दूसरे के ऊपर प्रहार करने लगे ।आस पास के लोगों ने बीच बचाव करके किसी तरह मामले को शांत किया तब तक भैयन पक्ष के सोनू ,सोनू की मां,बब्बू ,मंजीत को चोटें आ गई ।उधर सिंधोरी लाल पक्ष के कुंजन लाल ,सिंधोरी लाल व उसकी पत्नी फोटो देवी को भी चोटे आ गई ।दोनो पक्ष थाने पहुंचे और एक दूसरे के ऊपर आरोप लगाते हुए शिकायती पत्र दिया ।पुलिस ने सभी घायलों को इलाज के लिए अस्पताल भेजा और दोनो पक्षो की ओर से मिली शिकायती पत्र के आधार पर केस दर्ज कर चालान कर दिया।

अनियंत्रित डीसीएम ट्रक की चपेट में आने से बाइक सवार की मौत

करछना। थाना क्षेत्र के प्रयागराज - मिर्जापुर मुख्य मार्ग पर भीरपुर पुलिस चौकी के समीप बरम मोरी के पास मंगलवार की रात लगभग 11 बजे अनियंत्रित डीसीएम ट्रक से कुचलकर एक बाइक सवार युवक की मौत हो गई। जबकि बाइक चला रहा युवक गंभीर रूप से घायल हो गया ट्रक अनियत्रित होकर सड़क पर पलट गई और उसमे केला लदा था जो मेजा की ओर जा रही थी। जिसे स्थानीय लोगों की मदद से इलाज के लिए जिला अस्पताल पहुंचाया गया। जहां चिकित्सकों ने प्राथमिक उपचार के बाद बेहतर इलाज के लिए रेफर कर दिया है। चनैनी गांव निवासी आशु उर्फ. आशुतोष सिंह पुत्र मोहन सिंह 24 वर्ष की मौत हो गई जबकि सानू जयसवाल पुत्र महेन्द्र जयसवाल 23 वर्ष गभीर रूप से घायल हो गया जिसका उपचार चल रहा है। जैसे ही घटना की सूचना घर वालों को मिली आनन-फानन में मौके पर पहुचे और जहां आसू मृत पडा था घटना की सूचना पुलिस को मिली तो मौके पर पहुंचकर मृत युवक का शव को कब्जे में लेकर शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया।

कलयुगी माँ ही निकली 6 वर्षीय मासूम की हत्यारी

हंड़िया। हंडिया थाना क्षेत्र के बदला भेस्की गांव में 2 दिन पहले एक 6 वर्षीय मासूम की गला दबाकर हत्या का मामला प्रकाश में आया था,जिसके बाद पुलिस ने सभी पहलुओं पर जांच किया तो उसे मां के ऊपर ही शक हुआ, जब पुलिस ने मासूम किशोरी के माता-पिता को थाने लाकर कड़ाई से पूछताछ शुरू किया तो मां के सब्र का बांध टूट गया और उसने कबूल कर लिया कि उसने ही अपनी 6 वर्षीय पुत्री अंशिका का गला दबाकर हत्या किया है।

हत्यारोपी मां

आर्थिक तंगी ने लिया एक और मासूम की जान

आरोपी मां उषा देवी पत्नी रत्नेश कुमार ने अपने बयान में बताया कि परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी जिसके कारण आए दिन परिवार में कलह होता रहता था उस रात गुस्से में आकर उसने अपनी बेटी का गला दबाकर हत्या कर दिया।

एक और सरकार जहां गरीबी मिटाने की बात करती है वहीं अब भी समाज में ऐसे लोग हैं जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है।

सवाल यह खड़ा होता है कि अगर पीड़ित परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी बदतर थी तो जिम्मेदार अधिकारी और ग्राम प्रधान ने अब तक ध्यान क्यों नहीं दिया क्यों पीड़ित परिवार को कोई सरकारी मदद नहीं किया गया।

पान में छुपा है कई बीमारियों को दूर करने का राज

चौरसिया समाज के लोग पान बरेजा निर्माण कर बागवानी करते है। यह इनका मूल व्यवसाय है

फैयाज मंसूरी

मऊआइमा। आज के दौर में पान का ज्यादा तर लोग शौकिया इस्तेमाल करते है। लेकिन पान का सेवन के बारे में लोगो को यह मालूम नही है कि पान कितना लाभ दायक होता है पान का सेवन करने से कई बीमारियां दूर होती है। पान अत्यन्त चरपरा, कटु, क्षारयुक्त एवं मधुर होता है इसकी उपस्थिति में वात, कफ एवं कृमियों को विदा लेनी पड़ती है मुंह की दुर्गन्ध को यह दूर करता है बाजीकरण है, धारण-शक्ति एवं काम-शक्ति को बढ़ाता है यह जितना पुराना होता है, उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है पान खाने से शारीरिक एवं मानसिक थकान दूर हो जाती है पान के चबाने एवं चूसने पर लार की मात्रा अधिक निकलती है, जिससे पाचन-क्रिया में सहायता मिलती है इससे प्यास और भूख भी शान्त हो जाती है तथा निम्न रोगों में भी यह बहुत लाभकारी है।

पान भारत की प्रमुख व्यवसायिक फसल है। इसका उत्पाद उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश में अधिक किया जाता है, जिससे प्रतिवर्ष लाखो करोडो की आय प्राप्त होती है। इसकी खेती और व्यापार से जुड़े लाखों लोगों के जीविकोपार्जन का यह एक महत्वपूर्ण साधन है। भारतीय उपमहाद्वीप में पान का जितना महत्व है, उतना नहीं है। पान एक नगदी फसल है। वेदों एवं पुराणों तथा अन्य प्राचीन संस्कृत साहित्य के उद्धरणों से प्रमाणित होता है कि हमारी सभ्यता, धर्म और इतिहास से पान का घनिष्ठ संबंध रहा है। पान का मानव जीवन में औषधीय महत्व भी है। आयुर्वेद के महान ग्रंथ सुश्रुत संहिता के अनुसार पान गले की खरास और आवाज को मधुर करता है। फेफड़े की सूजन, खाँसी, सर्दी, जुकाम एवं पाचन तन्त्र के विकार में यह अत्यंत उपयोगी है। भारत वर्ष के लगभग 20 राज्यों में इसकी खेती व्यवसायिक स्तर पर की जाती है।

उत्तर प्रदेश के महोबा जनपद में पान काफी मात्रा में होता है। यहां के देशावरी पान ने देश व दुनियां में अपनी पहचान बनायी है यह पान कई लाभप्रद गुणों से सम्पन्न होता है।

एक बुजुर्ग चौरसिया समाज के व्यक्ति का कहना है कि पान का सेवन करने से अनेको लाभ है।

दैनिक जीवन में पान से स्वास्थ्य का लाभ

मुख के रोग : (छाले, पायोरिया) पान में चने की दाल के बराबर कपूर का टुकड़ा डालकर पान चबाऐं पीक थूकते जाऐं ध्यान रहे कि पीक पेट में न जाये। इससे शीघ्र लाभ मिलेगा।

नाभि का पकना : कभी-कभी नाभि से रक्त, मवाद आने लगता है शिशुओं की नाल काटने पर नाभि पक जाती है पर चिकनी सुपारी पानी में घिसकर सुबह-शाम दो बार नित्य लगाऐं नाभि ठीक हो जाएगी।

पान के सेवन से हानि : भूखे पेट पान खाना हानिकारक है गर्म प्रकृति वालों को पान नहीं खाना चाहिए।

गुर्दे के रोग : वृक्क (गुर्दे) के रोगों में पान लाभदायक है।

दर्द एवं शोथ : यकृत के दर्द, श्वासनली शोथ में सीने पर पान का तेल लगाकर, गर्म करके बांधने से लाभ होता है।

खांसी व जुकाम में पान लाभदायक है : खांसी, जुकाम हो तो पान में लौंग डालकर खाऐं खांसी बार-बार चलती हो तो सेंकी हुई हल्दी का टुकड़ा डालकर पान खाऐं खांसी रात को अधिक चलती हो तो पान में अजवाइन डालकर खाऐं।

रेलवे लाइन के समीप पलटा गिट्टी से भरा ट्रक, रेलमार्ग बाधित

गिट्टी से भरे ट्रक के तारा गांव में रेलवे लाइन के समीप पलट जाने से 2 घंटे से अधिक बाधित रहा प्रयागराज वाराणसी रेल मार्ग

हंड़िया। प्रयागराज वाराणसी रेल मार्ग पर हो रहा दोहरीकरण का कार्य उस समय बाधित हो गया जब 13 अक्टूबर 2020 दिन मंगलवार की सुबह गिट्टी से भरा ट्रक रेलवे लाइन के पास से गुजर रहा था जैसे ही ट्रक तारागांव के समीप पहुंचा था कि नई मिट्टी और दलदल होने के कारण ट्रक एक तरफ झुकने लगा जिसको देखते हुए ड्राइवर ने गाड़ी बंद कर दिया और खुद नीचे उतर गया।

देखते ही देखते ट्रक रेलवे लाइन के पास पलट गए और ट्रक में भरी गिट्टी रेलवे लाइन पर पलट गया जिससे प्रयागराज-वाराणसी रेल का आवागमन बाधित हो

रेलवे ट्रेक पर पड़ी गिट्टी हटाता जेसीबी

गया। सूचना पर पहुंचे रेल विभाग के आला अधिकारी और ठेकेदारों ने दो दो जेसीबी के माध्यम से ट्रक में भरे गिट्टी को खाली कराया। ट्रक को सीधा किया गया जिसके बाद रेलवे लाईन पर पड़ी गिट्टी को भी हटाया गया, और कंट्रोल रूम को सूचना दी गई,और आवागमन पुनः सुचारू रूप से चालू हो सका।

इतना सब कुछ करने में अधिकारियों को 2 घंटे से ज्यादा का समय लग गया और तब तक प्रयागराज-वाराणसी रेल मार्ग बाधित रहा।

किरांव गांव में कुछ दिन पहले चोरी करने आए दो चोर पकड़े गए

हंडिया। हंडिया थाना क्षेत्र के किराव गांव के रहने वाले संतोष सिंह पुत्र सूर्य बली जो किरांव गांव के तीन मोहानी रोड पर जमीन खरीद कर दो कमरा बनाकर किराना का दुकान खोल रखा हैं। उसी दुकान से अपना परिवार का भरण पोषण कर रहे हैं ।कुछ दिनों बीती रात दिनांक 10 अक्टूबर दिन शनिवार की रात्रि 3:00 बजे हरिश चंद पुत्र ननकू उर्फ नानक वह अपने भाई लालचंद व मूलचंद पुत्र गढ़ मनई उर्फ नानक हरिश्चंद्र का लड़का हाथ में लाठी व कुल्हाड़ी लेकर दुकान में चोरी करने आए थे। दुकान का ताला खोलकर दुकान के अंदर घुसे तभी दुकान के बाहर सो रहे, संतोष पुत्र सूर्य बली ने आहट से देखा तो दुकान का दरवाजा खुला था। संतोष सिंह ने चोर चोर कर के चिल्लाने लगे, और दुकान के अंदर एक चोर को पकड़ लिए। दूसरा चोर भाग कर कहीं छुप गया। तो गांव वालों ने शोरगुल सुनकर चोर को ढूंढने लगे तभी गांव के कुछ लोगों ने चोर को 300 मीटर दूरी पर दूसरे चोर को पकड़ लिया। अंधेरे में मारते पीटते हुए चोर को दुकान के पास लेकर आए।वही लोगों ने डायल 112 पुलिस को सूचना दी । वही संतोष सिंह ने हंडिया थाने में सूचना दी सूचना पर हंडिया पुलिस पहुंची पुलिस ने चोर हंडिया थाने ले गई। संतोष कुमार सिंह ने बताया कि हंड़िया थाने में चोरों के खिलाफ तहरीर देकर कार्रवाई करने की मांग की। लेकिन अभी तक कोई कार्रवाई नहीं हुआ। आए दिन गांव में चोरों का हौसला भी बुलंद रहता है। चोरों को प्रशासन का कोई भय नहीं है।

सड़क पर बिखरे खून से हड़कप, घंटो हलाकान रही पुलिस

करछना। थाना क्षेत्र के महोरी रीवा गांव में बुधवार सुबह सड़क पर विखरा खून देख ग्रामीणो में किसी अनहोनी से हडकप मच गया जानकारी होते ही मौके पर करछना पहुंची पुलिस भी पहुची और विखरे खून से घटो छानबीन करती रही लेकिन खबर गलत निकली।ग्रामीणो ने बताया कि चंद्रमा प्रसाद पुत्र सरयू प्रसाद निवासी बकरावां थाना कौधियारा के रहने वाले व्यक्ति की तबियत ठीक नहीं चल रही थी जिसको एक ओझा के यहा झाडफूक कराने महोरी रीवा शाम को लें आये थे जो रात अचानक गायब हो गया था। जिसके बाद सुबह लोगों की नींद खुली तो देखा कि चंद्रमा प्रसाद वहां मौजूद नहीं है इसके बाद हड़कंप मच गया पास ही सड़क पर खून बिखरा हुआ था जिससे लोगों में दहशत फैल गई

जांच पड़ताल करती पुलिस व जुटी भीड़

आनन-फानन में सूचना पुलिस को दी गई मौके पर पहुंची 112 नंबर व थाना करछना थाने की पुलिस मौके पर पहुंचे और तलाश करनी शुरू कर दी।आसपास के खेतों में जाकर काफी खोजबीन की गई लेकिन कहीं कुछ नहीं मिला गायब हुआ व्यक्ति की तलाश में निकले लोगों ने फोन के माध्यम से बताया कि व्यक्ति अकोढा के पास पकड़ा गया है जिसके बाद लोगों ने राहत की सांस ली और हत्या की सूचना गलत साबित हुई वही गिरे हुए खून के रहस्य का पता नही चल सका।

बैठक में शामिल लोग

साहित्य संवर्धन संस्थान के तृतीय स्थापना दिवस पर बैठक सम्पन्न

जसरा। साहित्य संवर्धन संस्थान के तृतीय स्थापना दिवस पर संस्थान के पदाधिकारियों की एक बैठक विश्वनाथ नगर कालोनी जसरा स्थित कार्यालय पर की गयी। बैठक में सामाजिक दूरी एवं शासन द्वारा जारी गाइड लाइन का पूरी तरह से अनुपालन किया गया। अध्यक्षता गांव की नई आवाज पत्रिका के संपादक विजय चितौरी ने की। संस्थान के सचिव राम लखन प्रतापगढ़ी' ने वार्षिक लेखा जोखा प्रस्तुत किया। बैठक में निर्णय लिया गया कि अप्रैल २०२१ के साहित्योत्सव में पांडिचेरी की साहित्यकार डॉ० ज्योति किरण को डा० एम० गोविंद राजन भाषा सेतु सम्मान से नवाजा जाएगा। इसी प्रकार संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष दिये जाने वाले दर्जनों पुरस्कारों की घोषणा की गयी। कार्यक्रम के अंत में संस्थान के संरक्षक रहे स्व० शंकरलाल केसरवानी 'चरणरज' की आत्मा की शांति के लिए दो मिनट का मौन रखा गया। बैठक में गीतकार राजेन्द्र शुक्ल,शंकर लाल साहू, के० के० शुक्ल, दिनेश आदि रहे।

गैंगरेप आरोपी को पुलिस ने पकड़ा, भेजा जेल

उतरांव। उतरांव थाना क्षेत्र के कटहरा गांव में 8 अक्टूबर को एक किशोरी के साथ गैंगरेप कर व धमकी देकर युवक फरार हो गए थे।किशोरी की माँ कमला देवी 9 अक्टूबर को थाना उतरांव में पहुचकर नामजद तहरीर देकर कार्यवाही की मांग की।उतरांव पुलिस ने वादी की तहरीर पर गैंग दुष्कर्म मारपीट व पास्को में मुकदमा पंजीकृत कर आरोपियों की तलाश में जुट गई थी।मंगलवार सुबह 9 बजे उतरांव पुलिस को मुखबिर ने सूचना दिया कि अगर सक्रियता दिखाई जाए तो दुष्कर्म में वांछित अभियुक्त पकड़ा जा सकता है। उतराव थाना अध्यक्ष चंद्र भूषण मौर्य बहुत ही सक्रियता के साथ अपनी पुलिस टीम के साथ मुखबिर के बताए सटीक सूचना रेलवे स्टेशन सैदाबाद सुबह लगभग 9:00 बजे पहुंच गए। सूचना पर मुकदमे में वांछित अभियुक्त संजय पुत्र लालचंद निवासी दाउदपुर थाना हण्डिया को गिरफ्तार कर न्यायालय के लिए चालान कर दिया। गिरफ्तारी टीम में मुख्य रूप से थाना अध्यक्ष चन्द भूषण मौर्य, कांस्टेबल आनंद सिंह भानु प्रताप शुक्ला मौजूद रहे।

तहसील के गावों में अतिक्रमण से मुक्त होगी जमीन, चिन्हित कर लगाया बोर्ड

करछना। क्षेत्र में लगातार भू माफिया पर कार्रवाई की जा रही है इसी क्रम में गांव में सरकारी तालाब बंजर आबादी की जमीनों को अवैध कब्जा मुक्त कराया जा रहा है एसडीएम आकांक्षा राना ने बताया कि सरकारी जमीनों को गांव-गांव में चिन्हित कर खाली कराया जा रहा है! इसके लिए विभिन्न गांव में लेखपाल और कानूनगो अमीन की टीम गठित कर कार्रवाई की जा रही है! क्यों माफिया अवैध जमीन कब्जा करने में संलिप्त हैं उन पर मुकदमा दर्ज कराया जा रहा है! यह कार्रवाई आगे भी जारी रहेगी! वहीं प्रशासन की इस कार्रवाई से लोगों में हड़कंप मचा रहा।इसके अलावा करछना के मुगारी धरी गढ़वा कला, खाई लॉयन सड़वा आदि गांव में कार्रवाई की जा रही है और जांच की जा रही है।इसके अलावा करछना के कई गावो मे इस तरह से सरकारी जमीनो पर हुए कब्जे के लिए टीम बनाई गई है।

प्रशासन द्वारा लगाया गया बोर्ड

मनकामेश्वर नाथ मंदिर में किया गया अखंड रामायण का पाठ

फूलपुर। फूलपुर क्षेत्र के बाबूगंज बाजार स्थित प्राचीन बाबा मनकामेश्वर नाथ मंदिर में मंगलवार को भक्तों ने अखंड रामायण का पाठ कर क्षेत्र की कुशलता मांगी। मनकामेश्वर मंदिर में माथा टेकर भक्तों ने अपने ऊपर दया दृष्टि बनाए रखने की प्रार्थना करते हुए अपने अराध्य देव के चरणों में पुष्प अर्पित किया। संरक्षक राकेश जायसवाल ने बताया कि प्रत्येक वर्ष की भांति भी इस बार अखण्ड रामायण का पाठ किया जा रहा है।अध्यक्ष विनोद कुमार मोदनवाल ने बताया कि पन्द्रह अक्टूबर को अखण्ड रामायण के पाठ समापन के बाद अगले दिन विशाल भण्डारे का आयोजन किया गया है। उन्होंने भक्तों से भण्डारे में पहुंचकर प्रसाद ग्रहण करने की अपील की।इस मौके पर मंत्री विवेक केसरवानी, कोषाध्यक्ष हरिश्चंद्र गुप्ता, आकाश केसरवानी, उमंग केसरवानी, सुभाष केसरवानी, अमित गुप्ता, विष्णु मोदनवाल सहित अन्य भक्त उपस्थित रहे।

प्रयागराज हलचल

संक्षेप समाचार

प्रयागराज मंडल के हर स्टेशन पर वाईफाई की सुविधा

प्रयागराज। अब प्रयागराज मंडल के किसी भी स्टेशन पर ट्रेन खड़ी होती है तो बिना नेट के इंटरनेट का उपयोग कर सकते हैं। प्रयागराज मंडल के सभी स्टेशनों पर वाईफाई की सुविधा उपलब्ध कराई गई है। अभी तक प्रयागराज मंडल के बड़े स्टेशनों पर वाईफाई की सुविधा मिलती थी। कोरोना काल के चलते यात्री ट्रेनों का संचालन रुका तो प्रयागराज मंडल प्रबंधन ने छोटे स्टेशनों को भी वाईफाई से लिंक कर दिया। अब मंडल के सभी 111 स्टेशनों पर वाईफाई की सुविधा मिलने लगी है। प्रयागराज मंडल के जनसंपर्क अधिकारी केशव त्रिपाठी ने बताया कि ट्रेनों में यात्रा करते समय अक्सर इंटरनेट नेटवर्क की समस्या रहती है। नेटवर्क की समस्या के चलते यात्री ट्रेन यात्रा के दौरान इंटरनेट से जुड़े काम नहीं कर पाते। अब यह परेशानी नहीं होगी। यात्रियों को स्टेशनों पर मुफ्त वाईफाई की सर्विस मिलेगी।

दो विक्रमों की आमने सामने भिड़ंत में एक की हालत नाजुक, कई घायल

नवाबगंज। बुधवार सायं काल लखनऊ प्रयागराज हाईवे मार्ग के नवाबगंज थाना क्षेत्र के टिकरी गांव के समीप दो विक्रमों की आमने सामने टक्कर हो गई। जिसमें कई लोग घायल हो गए। घटना की सूचना पाकर पुलिस एवं एंबुलेंस मौके पर पहुंची और घायल को उपचार के लिए अस्पताल ले जाया गया, जहां एक की हालत चिंताजनक देख डॉक्टरों ने सारण के लिए रिफर कर दिया।

थाना नवाबगंज सरावा गांव निवासी मनोज कुमार पुत्र किशोरीलाल निवासी ग्राम बुधवार शाम विक्रम से घर वापस लौट रहा था। जैसे ही विक्रम नवाबगंज के टिकरी गांव के समीप पहुंचा कि सामने से आ रही विक्रम अनियंत्रित होकर आपस में टकरा गई जिसमें मनोज कुमार को गंभीर चोटें आई हैं जबकि विक्रम में सवार अन्य लोग भी चोटिल हो गए हाईवे मार्ग पर घटी घटना की सूचना पाकर नवाबगंज पुलिस एवं 108 एंबुलेंस ई एम टी मोइनुद्दीन एवं पायलट संघ मौके पर पहुंचे और घायल को एंबुलेंस द्वारा सीएससी कौड़िया ले जाया गया जहां डॉक्टरों ने हालत चिंताजनक देवशरण के लिए रेफर कर दिया वहीं अन्य मामूली रूप से घायल निजी अस्पताल में इलाज कराते हुए घर के लिए निकल दिए।

घायल को अस्पताल ले जाती एंबुलेंस

होलागढ़ में सराफा कारोबारी से हुई छिनैती के मामले का खुलासा करने में पुलिस नाकाम

होलागढ़। एक पखवारे पूर्व सराफा कारोबारी से हुई छिनैती के मामले का पदार्फाश करने में पुलिस नाकाम रही है। जबकि घटना मामले में पुलिस दो अज्ञात बदमाशों के खिलापफ रिपोर्ट दर्ज कर कार्रवाई भी की है; लेकिन छिनैती मामले का खुलासा करने में पुलिस नाकाम रही है। ऐसे में लगातार भुक्तभोगी पुलिस अधिकारियों से मामले का खुलासा करने की गुहार लगा रहा है। घटना होलागढ़ चैबारा मजरा अहिरान गांव की है। बतादें कि थाना सोरांव गधिना गांव निवासी दीपक सोनी होलागढ़ के चांदनी चौक चैराहे पर सराफा की दुकान खोल रखा है। बताया जाता है कि एक पखवारे पूर्व दुकान बंद कर वह बाइक से अपने घर के लिए निकला था। आरोप था कि जैसे ही वह होलागढ़ के चौबारा अहिरान गांव के समीप पहुंचा कि बाइक सवार अज्ञात बदमाशों द्वारा कारोबारी से बाइक एवं मोबाइल की छिनैती कर फरार हो गये। घटना मामले में पुलिस भुक्तभोगी की तहरीर पर अज्ञात बदमाशों के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर तो कार्रवाई की है। लेकिन घटना मामले का खुलासा पुलिस करने में नाकाम रही है। छिनैती मामले का खुलासा न होने से जहां भुक्तभोगी पुलिस से गुहार लगा रहा है।

एएनएम घर पर कराती थी महिलाओं का प्रसव, तबादला

प्रयागराज। सरकारी नौकरी कर रही एएनएम और डाक्टर सरकारी अस्पताल के अलावा कहीं और निजी प्रैक्टिस नहीं कर सकते हैं। ऐसा करने पर उनके खिलाफ कार्रवाई होती है। फिर भी शहर से लेकर गांव तक वह निजी प्रैक्टिस कर रहे है। हाल ही में ऐसा एक मामला सामने आया है। एक एएनएम ने गर्भवती महिलाओं का प्रसव अस्पताल में कराने के बजाय अपने घर पर करा दिया। इसका पदार्फाश तब हुआ जब उसने घर में सामान्य प्रसव कराते समय एक नवजात की जान चली गई। भुक्तभोगी की शिकायत पर जब सीएमओ ने मामले की जांच कराई तो यह सही पाया गया। एएनएम का ट्रांसफर हंडिया से कोरांव के लिए कर दिया गया। एक जांच सीमित भी गठित कर दी गई है। सीएमओ डॉ. जीएस वाजपेयी ने बताया कि हंडिया क्षेत्र के एक व्यक्ति द्वारा यह अवगत कराया गया कि उसकी बहू का प्रसव होना था। इसके लिए उसे उपरदहा सीएचसी पर ले जाया गया तो अल्ट्रांसाउंड कराके देखने के बाद डॉक्टर ने कहा कि बच्चा ऑपरेशन से ही पैदा होगा। लेकिन वहां मौके पर मौजूद नर्स रेनूलता विश्वकर्मा ने आश्वासन दिया कि मेरे आवास पर लेकर आइए हम साामान्य प्रसव करा देंगे। सामान्य प्रसव करते समय एएनएम ने महिला का इतना ज्यादा पेट दबा दिया शिशु की जान चली गई।

सीएमओ ने बताया कि मामले की जांच एसीएमओ डॉ. आरसी पांडेय व एनएचएम के जिला कार्यक्रम प्रबंधक विनोद कुमार सिंह द्वारा किया गया तो इसमें सत्यता पाई गई। पता चला कि स्वास्थ्य केंद्र पर आने वाली गर्भवती महिलाओं को बहकाकर एएनएम द्वारा अपने आवास पर ले जाया जाता था। प्रसूता को संस्थागत प्रसव के लिए लाभार्थी के रूप में सरकारी अनुदान भी दिलाती थीं। सीएमओ के मुताबिक, हंडिया ब्लाक के सीकी शरीफपुर उप स्वास्थ्य केंद्र पर तैनात एएनएम रेनूलता विश्वकर्मा का कोरांव केंद्र पर ट्रांसफर कर दिया गया है। प्रकरण की अगली कार्यवाही के लिए सीएमओ ने अपर मुख्य चिकित्सा अधिकारी एनएचएम, मंडलीय लेखा प्रबंधक एवं जिला प्रशासनिक अधिकारी की एक जांच कमेटी गठित कर दी है। शीघ्र ही इसकी रिपोर्ट उपलब्ध कराने के लिए कहा गया है।

मऊआइमा में पीस कमेटी की बैठक सम्पन्न

मेले में नहीं शामिल होंगे वृद्ध गर्भवती महिलाएं और बच्चे

मऊआइमा। मऊआइमा थाना परिसर में पीस कमेटी की बैठक में आगामी त्योहारों को देखते हुए अधिकारियों ने मेला कमेटी के जिम्मेदारान को सख्त हिदायत दी । तथा शासन के दिशा निर्देशों का पालन करने को कहा गया है।

मऊअआइमा थाना परिसर में बुधवार को आगामी त्योहारों दुगार्पूजा एंव विजय दशमी को लेकर पीस कमेटी की बैठक का आयोजन किया गया इस अवसर पर एस पी गंगापार धवल जायसवाल, सीओ आशोक वेंकट के, एसडीएम अनिल चतुर्वेदी, इंस्पेक्टर राम केवल पटेल आदि ने भाग लिए। अधिकारियों ने कहा कि सार्वजनिक स्थानों सडकों के निकट दुर्गा प्रतिमाओं की स्थापना नहीं होगी न ही मेले और पूजा स्थल पर वृद्ध गर्भवती महिलाओं एंव बच्चे ही शामिल होंगें। अधिकारियों ने कहा कि कोई भंडारा नहीं होगा। केवल पैकेट का वितरण होगा। मास्क लगाना अनिवार्य होगा तथा सोशल डिस्टेंसिंग का पालन जरुर करें। एक सौ से दो सौ तक ही लोग मेले में शामिल होंगें। नियम का पालन न करने पर मुकदमा दर्ज कर सख्त कार्यवाही की जाएगी। इस अवसर पर मेला कमेटी के जिम्मेदारान मौजूद थे।जगदीश खत्री, अशोक खत्री, निमेष खत्री, लाल बाबू पटेल,र ाम सजीव पटेल, पूर्व चेयरमैन हाजी मो शोएब अंसारी, ब्लाक प्रमुख सुधीर मौर्या सन्ने प्रधान, बचऊ प्रधान आजाद मंसूरी, मो सारिक, शहबान मंसूरी सहित दर्जनों लोग मौजूद रहे।

पीस कमेटी की बैठक में उपस्थित लोग

दस लीटर कच्ची दारू के साथ एक गिरफ्तार

मऊआइमा। कच्ची महुआ की शराब के साथ पुलिस ने एक को गिरफ्तार कर मुकदमा दर्ज कर दिया है। मिली जानकारी के अनुसार मऊआइमा थाना क्षेत्र के ग्राम सेमरावीरभानपुर में एक गैलन में कच्ची शराब ले जाने की सूचना पर पुलिस ने मौके से झुरई सरोज को मय गैलन दस लीटर अवैध कच्ची शराब के साथ गिरफ्तार कर मुकदमा दर्ज कर दिया है।

दो जोड़ी विशेष गाड़ियों का संचालन

प्रयागराज। रेल प्रशासन द्वारा यात्रियों की सुविधा हेतु गाड़ी 04151-04152 कानपुर सेन्ट्रल-लोकमान्य तिलक (ट) एवं गाड़ी 04131-04132 प्रयागराज-उधमपुर सुपरफास्ट विशेष गाड़ी (पूर्ण आरक्षित) का संचालन किया जा रहा है। जिसके अंतर्गत गाड़ी 04151-04152 कानपुर सेन्ट्रल-लोकमान्य तिलक (ट) सुपरफास्ट विशेष गाड़ी (सप्ताह में दो दिन) कानपुर सेन्ट्रल से गाड़ी 04151 प्रत्येक सोमवार एवं शुक्रवार 23 अक्टूबर से 30 नवम्बर तक तथा लोकमान्य तिलक (ट) से गाड़ी 04152 प्रत्येक मंगलवार एवं शनिवार 24 अक्टूबर से 01 दिसम्बर तक चलेगी। गाड़ी संरचना में एसएलआरडी 02, सामान्य श्रेणी 05, स्लीपर श्रेणी 08, वातानुकूलित तृतीय श्रेणी 05, वातानुकूलित द्वितीय श्रेणी एक डिब्बे होंगे। इसी प्रकार गाड़ी 04131-04132 प्रयागराज-उधमपुर सुपरफास्ट विशेष एक्सप्रेस (सप्ताह में दो दिन) प्रयागराज से गाड़ी 04131 प्रत्येक मंगलवार एवं शनिवार 20 अक्टूबर से 28 नवम्बर तक तथा उधमपुर से गाड़ी 04132 प्रत्येक बुधवार एवं रविवार 21 अक्टूबर से 29 नवम्बर तक चलेगी। गाड़ी संरचना में सामान्य श्रेणी 05, स्लीपर श्रेणी 08, वातानुकूलित तृतीय श्रेणी 04, वातानुकूलित द्वितीय श्रेणी के एक डिब्बे होंगे।

69 हजार शिक्षक भर्ती के अभ्यर्थियों की शुरू हुई काउंसिलिंग

प्रयागराज। 69000 सहायक शिक्षक भर्ती की काउंसिलिंग बुधवार को सेंट एंथोनी कॉलेज में शुरू हुई। जारी की गई 31277 की लिस्ट में प्रयागराज में 990 के सापेक्ष 979 अभ्यर्थियों का चयन हुआ।

सेंट एंथोनी गर्ल्स इंटर कॉलेज में आयोजित काउंसिलिंग के पहले दिन पुरुष अभ्यर्थियों को बुलाया गया। गुरुवार को महिला व दिव्यांग अभ्यर्थी बुलाए गए हैं। काउंसिलंग के लिए आए अभ्यर्थियों ने अपने दो साल के संघर्ष के बाद चयन पर खुशी जताई। साथ ही कहा कि स्कूल आवंटन होते ही वे ज्वाइन कर अध्यापन कार्य शुरू कर देंगे। अभ्यर्थियों को तो खुशी है ही उनके परिजनों को भी लम्बे समय से इंतजार के बाद शिक्षक भर्ती काउंसलिंग को लेकर चेहरे पर खुशियां हैं। वह अपने खुशियों का इजहार मंदिरों में माथा टेककर देवताओं को लड्डू चढ़ा कर रहे हैं।

काउंसिलिंग कराने पहुंचे अभ्यर्थी

ग्राम पंचायतों में सार्वजनिक स्थलों पर चला सफाई अभियान

शंकरगढ़। विकास खंड शंकरगढ़ की ग्राम पंचायतों में साफ-सफाई व्यवस्था को बनाए रखने के उद्देश्य से एक अक्टूबर से सभी 76 ग्राम पंचायतों में विशेष सफाई अभियान चलाया जा रहा है। इसी क्रम में क्षेत्र की कई ग्राम पंचायतों में विशेष अभियान चलाया गया। इस दौरान ग्राम पंचायतों के सार्वजनिक स्थलों के अलावा परिषदीय विद्यालयों के आसपास विशेष तौर पर साफ-सफाई की गई। इस सफाई अभियान के दौरान विद्यालयों के अंदर और बाहर उगी झाड़ियों को भी साफ किया गया। विकास खंड शंकरगढ़ के सहायक विकास अधिकारी (पंचायत) ओम प्रकाश पांडेय ने इस कार्य का औचक निरीक्षण भी किया। एडीओ ओम प्रकाश पांडेय ने कहा कि विकास खंड के सभी सफाई कर्मियों को इस अभियान के संबंध में आदेश निर्गत किया गया है। यदि किसी भी ग्राम पंचायत में सार्वजनिक स्थल पर गंदगी दिखी या कहीं नाली चोक पाई गई तो संबंधित सफाईकर्मी के खिलाफ सख्त कार्यवाही की जाएगी।

संचारी रोगों के मद्देनजर चल रहा अभियान

एडीओ (पंचायत) ओम प्रकाश पांडेय ने बताया कि ग्राम पंचायतों की साफ-सफाई के निमित्त बीते दिनों ब्लॉक मुख्यालय पर एक बैठक हुई थी, जिसमें साफ सफाई व्यवस्था सुनिश्चित करने और संचारी रोगों के प्रकोप से लोगों को बचाने के लिए यह अभियान चलाया जा रहा है। इसके लिए कई टीमों का गठन किया गया है। यह टीम अपने-अपने क्षेत्र में रहकर सफाई व्यवस्था सुनिश्चित कराएगी, इसमें किसी भी प्रकार की लापरवाही स्वीकार नहीं है।यह सघन अभियान 31 अक्टूबर तक लगातार चलेगा।

सफाई अभियान चलाते लोग

प्रयागराज जिले में तीन लाख सैंपल की हुई जांच दो लाख 80 हजार की रिपोर्ट निगेटिव

प्रयागराज। कोरोना वायरस संक्रमण काल में उतार-चढ़ाव के बीच राहत भरी खबर है। जिले में अब तक हुए तीन लाख सैंपल की जांच में 2 लाख 80 हजार लोगों की रिपोर्ट निगेटिव रही। जुलाई माह से जनपद में कोरोना संक्रमित मरीजों का ग्राफ तेजी से बढ़ा। यह क्रम अगस्त, सितंबर तक जारी रहा। अक्टूबर के पहले सप्ताह से संक्रमित मरीजों की संख्या कुछ कम हुई। अब यह आंकड़ा रोजाना 150 के आसपास है।

कोविड-19 के नोडल ऋषि सहाय ने बताया कि 12 अक्टूबर तक प्रयागराज में कुल 307876 लोगों के सैंपल जांच को लिए गए। इसमें से मात्र 21529 लोगों की

रिपोर्ट पॉजिटिव आई। यह कुल लिए गए सैंपल का 6.99 प्रतिशत है। संक्रमितों में से 14348 लोगों ने होम आइसोलेशन पूरा किया जबकि अस्पताल से 5012 लोग डिस्चार्ज किए गए। 12 अक्टूबर तक जिले में कोरोना के सिर्फ 2169 केस थे। 12 अक्टूबर को कोरोना से कोई मौत भी नहीं हुई। नोडल अधिकारी का कहना है कि संक्रमितों का प्रतिशत अन्य जिलों की तुलना में यहां काफी कम है। मरने वालों की संख्या भी 288 ही है।

अब तक सिर्फ 1.3 प्रतिशत लोगों की कोरोना के चलते मौत हुई है। यदि लोग सतर्कता बरतें, शारीरिक दूरी का ध्यान रखते हुए मास्क लगाएं और नियमित रूप से हाथ धुलें व सैनिटाइजेशन भी करें तो कोरोना को आसानी से हराया जा सकता है। इन सब के साथ लोगों को अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना होगा। रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाने के लिए प्रयास करते रहना होगा। यही संक्रमण से बचाव का सबसे बेहतर हथियार है।

16 से खुलेंगे पीवीआर और गौतम सिनेमाघर

प्रयागराज। पीवीआर और गौतम सिनेमाघर 16 अक्टूबर से खुलेंगे। शेष सभी सिनेमा हॉल एक नबंबर से खोले जाएंगे। गुरुवार से बुकिंग शुरू होगी। पीवीआर की दो ऑडी ही फिलहाल चलेगी। सरकार के आदेश के बाद सिनेमाघरों को खोलने की तैयारी शुरू हो गई है।

अखण्ड भारत संदेश के लिए स्वामी श्री योगी सत्यम कियायोग आश्रम एवं अनुसंधान सस्थान झूंसी, प्रयागराज 211019 से प्रकाशित एवं रामा प्रिंटिंग प्रेस 53/25/1ए बेली रोड नया कटरा प्रयागराज से मुद्रित।

मुद्रक/प्रकाशक

स्वामी श्री योगी सत्यम

पी0आर0बी0 एक्ट के अन्तर्गत समाचारों के चयन के लिए उत्तरदायी। इस समाचार पत्र में प्रकाशित समस्त समाचारों से संबंधित विवादों का न्याय क्षेत्र प्रयागराज होगा। आरएनआई नं0: UPHIN2001/9025

हिस्ट्रीशीटरों के ढहाए जाएंगे अवैध मकान

प्रयागराज। माफिया अतीक अहमद, दिलीप मिश्रा, बच्चा पासी, राजेश यादव, राम रोशन यादव के बाद अब अन्य शातिर अपराधियों के खिलाफ शिकंजा कसा जाएगा। जिले के कई ऐसे हिस्ट्रीशीटर हैं, जिन्होंने अपराध के जरिए करोड़ों रुपये की अचल संपत्ति बनाई है। अपनी रसूख का फायदा उठाकर अवैध मकान व दूसरे निर्माण कराए हैं, जिन्हें ढहाने की तैयारी चल रही है। पुलिस, प्रशासन और प्रयागराज विकास प्राधिकरण (पीडीए) की टीम ऐसे हिस्ट्रीशीटर की संपत्तियों को चिह्नित कर रही है। अधिकारियों के मुताबिक सिविल लाइंस, करेली, धूमनगंज, कैंट, नैनी और झूंसी समेत कई थाने की पुलिस कुख्यात अपराधियों की अचल संपत्ति की जानकारी जुटा रही है। अभी तक की छानबीन में पता चला है कि बमरौली, पोंगहट पुल, झलवा, पीपलगांव, बक्शीमोढ़ा, गौस नगर, सिविल लाइंस में कई अपराधियों ने अपने मकान व व्यावसायिक इमारत बनवाई है। निर्माण के दौरान पीडीए से मानचित्र भी नहीं स्वीकृत कराए गए हैं। वहीं, कुछ ऐसे भी हिस्ट्रीशीटर हैं, जिन्होंने अपने घरवालों के नाम पर जमीन खरीदकर आलीशान बिल्डिंग बनवाई है। झूंसी और नैनी के भी कुछ शातिर अपराधियों ने नियमों को दरकिनार कर अवैध निर्माण करवाए हैं। इसी आधार पर अब उनकी अचल संपत्ति के बारे में पता लगाकर ध्वस्तीकरण की कार्रवाई की जाएगी ' एसएसपी सर्वश्रेष्ठ त्रिपाठी ने बताया कि माफिया, गैंगस्टर और शातिर अपराधियों की अवैध अचल संपत्ति के बारे में जानकारी जुटाकर नियमानुसार कार्रवाई की जा रही है। ऐसा इसलिए किया जाएगा ताकि कोई फिर से अपराध के जरिए इस तरह का निर्माण न कर सके। पुलिस का कहना है कि तफ्तीश में यह बात भी सामने आई है कि गंगा के कछार, ससुर खदेरी नदी के आसपास सरकारी जमीन पर और पॉश इलाके में नजूल की भूमि व पार्क पर अवैध ढंग से कब्जा करके निर्माण कराया गया है। ऐसे अपराधियों की अचल संपत्ति की जांच पीडीए और राजस्व विभाग की टीम कर रही है। अपराध की लंबी सूची वाले बदमाशों के स्रोत के बारे में भी पता लगाया जा रहा है।

सड़क चौराहों व सार्वजनिक स्थलों पर दुर्गा पूजा पांडाल नही होंगे स्थापित : एसडीएम

घूरपुर। सड़क चौराहों व सार्वजनिक स्थलों पर किसी भी दशा में दुर्गा पूजा पांडाल नहीं स्थापित होंगे । उक्त बातें बुधवार के दिन एसडीएम बारा गौरव रंजन श्रीवास्तव ने घूरपुर में आयोजित दुर्गा पूजा पांडालों के संचालकों व रामलीला कमेटी के आयोजकों के बीच कही। उन्होंने आगे कहा कि साशन द्वारा निर्धारित गाइड लाइन का पालन जो भी नहीं करेगा उसके साथ सख्ती से कार्रवाई की जाएगी ।इस बीच उन्होंनो ने कहा कि जहां भी पूजा पांडाल स्थापित किये जायेंगे वहां प्रवेश और निकास के द्वार बनाये जाएंगे । साथ ही प्रवेश द्वार पर कमेटी के स्वयं सेवक सेनिटाइजर, थर्मल स्कैनर आदि लेकर खड़े रहेंगे । जिससे जो भी पांडाल में प्रवेश कर वह साफ सुथरा हो जायेऔर मास्क भी लगाए रहे । आगे कहा कि यद्यपि अपने यहां कोरोना कंट्रोल में है लेकिन फिर भी हमें सतर्क रहना है । पांडाल की सीमा से पचास फीसदी लोग ही एक बार मे मौजूद रह सकते हैं ।पांडाल के अंदर कोविड -19 के नियम के अनुसार दूरी का पालन करते हुए लोगों को बैठने की व्यवस्था की जाए ।रामलीला संचालकों से कहा कि उन्हें भी नियम का पालन करते हुए सामान्य दूरी ,मास्क, सेनिटाइजर ,थर्मल स्कैनर रखना जरूरी है ।सीओ करछना सौमेन्द्र मीना आईपीएस ने कहा कि किसी भी दशा में कानून का उल्लंघन करने वालों को बक्सा नहीं जाएगा ।अंत मे एसडीएम ने कहा कि रामलीला और दुर्गा पूजा पांडाल के संचालक परमिशन के लिए अप्लाई कर दे जिससे उनको समय से कार्यक्रम करने में दिक्कत ना आवे ।बिना परमिशन के कोई आयोजन किया तो उसके खिलाफ कार्रवाई निश्चित है। इस मौके एसओ घूरपुर भुवनेश कुमार चौबे, एसएसआई वीरेंद्र प्रताप सिंह, भूपेंद्र सिंह, शशिकान्त सिंह, शिवप्रताप सिंह, अंशू राय, दिलीप सिंह, भोला नाथ चौधरी समेत कई पुलिस कर्मी व गणमान्य मौजूद रहे ।

घूरपुर थाने में दुर्गा पूजा पांडाल के संचालकों को संबोधित करते एसडीएम व सीओ

प्रयागराज गुरूवार, 15 अक्टूबर, 2020

क्रियायोग सन्देश

क्रियायोग प्राचीन काल में वर्णित यज्ञ

क्रियायोग प्राचीन काल में वर्णित यज्ञ है।
यज्ञ तथा क्रियायोग की परिभाषा एक है ।
यज्ञ का सूत्र-
तप : स्वाध्याय ब्राह्मनिधानानि यज्ञः ।।
क्रियायोग का सूत्र -
तप : स्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि क्रियायोग : ।।
-पतंजलियोगदर्शनम् ।

तप, स्वाध्याय तथा ब्रह्म में ध्यान को यज्ञ कहा गया है, तथा तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधानानि का अभ्यास क्रियायोग है। वास्तव में यज्ञ तथा क्रियायोग का स्वरूप एक है। प्राचीन काल में क्रियायोग का अभ्यास यज्ञ के नाम से कराया जाता था। कालांतर में मानव मस्तिष्क के ज्ञान का लोप होने पर यज्ञ का मौलिक स्वरूप विकृत होने लगा। लोग यज्ञ के नाम पर पशु बलि, नर बलि आदि हिंसात्मक क्रियाओं को करने लगे तथा ब्रह्म को भरम, भूत पिचास आदि समझने लगे। यज्ञ का स्वरूप दूषित होता देखकर तथा इसकी पवित्रता, गोपनीयता व सूक्ष्ममता को बनाए रखने के लिए महर्षि पतंजलि ने यज्ञ को क्रियायोग तथा ब्रह्म को ईश्वर के नाम से पुनः परिभाषित किया।

तप का वास्तविक स्वरूप- तप का अभिप्राय नंगे पैर चलना धूप में बैठना, निर्जल व्रत रहना, अन्न न ग्रहण करना, कम से कम वस्त्र पहनना, एक पैर पर खड़े रहना आदि नहीं है। तप समत्व की अवस्था है।

श्रीमद्भागवत गीता में तप को सुख व दुःख को समान करने के

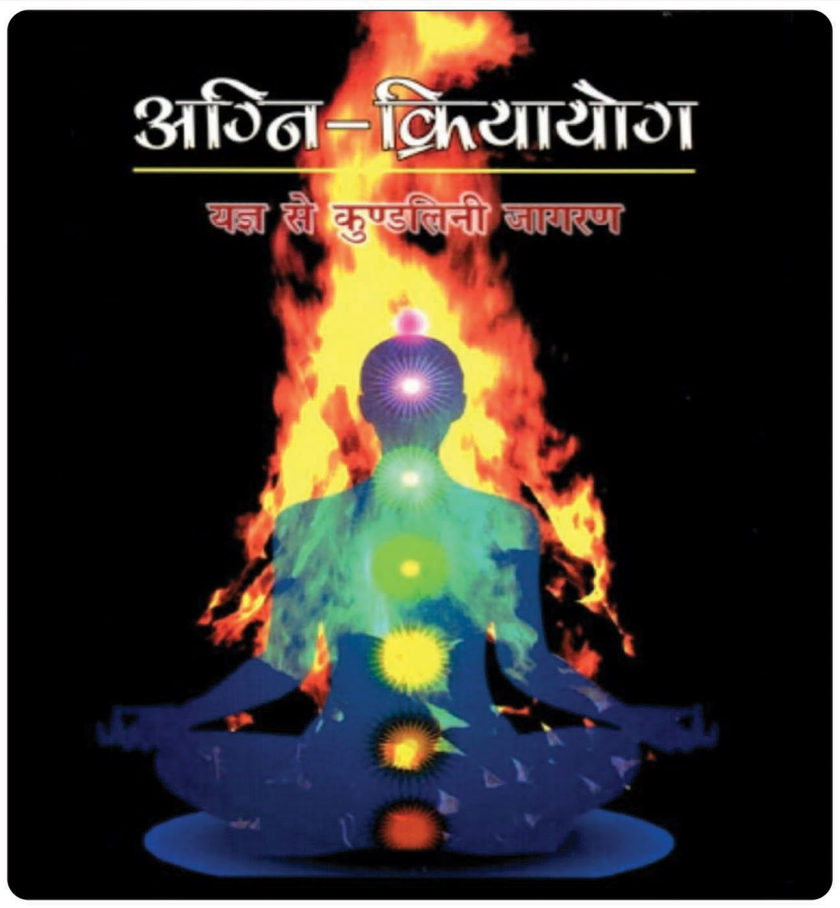

रूप में वर्णित किया गया है। सुख-दुख को समान करने का अभिप्राय है, सुख व दुःख को सुख दुःख न समझ कर ज्ञान तत्व, शक्ति तत्व, परम तत्व परमात्मा तत्व... की उपस्थिति के रूप में अनुभव करना।

सुख-दुःख की संपूर्ण अनुभूतियों को ज्ञानतत्व के रूप में अनुभव करने का प्रथम प्रयोग अपने निकटतम क्षेत्र (पैर की उंगली से सिर तक शरीर) में करना पड़ता है। शरीर में प्रकट होने वाले समस्त परिवर्तन जो दर्द आराम, कड़ापन ढीलापन, सुख-दुःख आदि के रूप मेंअनुभव होते हैं, को सुख दुःख नहीं बल्कि ज्ञान तत्व के रूप में स्वीकार करने का अभ्यास करते हैं। ज्ञान तत्व को ही सर्वशक्तिमान तत्व, परम तत्व, शक्ति तत्व आदि अनेक नामों से जानते हैं जो परब्रह्म का गुण है। पैर की उंगली से सिर तक अस्तित्व जो निकटतम क्षेत्र है, में प्रकट होने वाले परिवर्तन को ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हुए उससे जुड़ने का अभ्यास करना, स्वरूप में समत्व की स्थापना है। इस अवस्था के प्रकट होने पर साधक बाहर की सुखद व दुःखद अनुभूतियों से अप्रभावित रहता है। उसका स्वरूप विराट समुद्र की तरह होता है विश्व में सुख दुःख रूपी ज्वार भाटों के आने जाने से अंश मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता है। इस अवस्था को प्राप्त करना, तप सिद्ध करना है।

स्वाध्याय - स्वाध्याय का अभिप्राय है स्वयं के बारे में ज्ञान प्राप्त करना अर्थात अपने मौलिक स्वरूप को जान लेना। तप के सिद्ध होने पर स्वतःअपने मौलिक स्वरूप (सारस्वत व अमर स्वरूप) का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसलिए सच्चा तप वह है जिससे स्वाध्याय अर्थात स्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है।

ईश्वरप्रणिधानानि- ईश्वरप्रणिधानानि का अभिप्राय है ईश्वर से एकात्म की अनुभूति अर्थात अपने व परमात्मा के बीच दूरी की शून्यता का अनुभव कर लेना। स्वरूप में समत्व की पूर्ण स्थापना होने पर स्वरूप ज्ञान प्रकट होता है तथा स्वरूप ज्ञान की संपूर्णता में स्थित होने पर परमात्म अनुभूति हो जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि तप की पूर्णता स्वाध्याय तथा स्वाध्य की पूर्णता ईश्वरप्रणिधानानि है। तप के सिद्ध होने पर अन्य दोनों अवस्थाओं की प्राप्ति स्वतः हो जाती है।

क्रियायोग श्रीमद्भागवत गीता में वर्णित अग्निहोत्र

क्रियायोग को गीता बाईबिल, कुरान, गुरुग्रंथ साहिब, कबीर वाणी वेद, शास्त्र, आधुनिक विज्ञान जीवन जीने के सामान्य सरल नियम आदि किसी के भी द्वारा समझा जा सकता है। आइए..... यहां क्रियायोग को श्रीमद्भागवत गीता के द्वारा समझे- क्रियायोग गीता में वर्णित अग्निहोत्र है। अग्निहोत्र का अभिप्राय बाहर आग जलाकर उसमें घी, तेल, जड़ी-बूटी आदि डालकर हवन करना नहीं है। वास्तव में शास्त्रों में जिस अग्निहोत्र की चर्चा है, वह बाहर की अग्नि नहीं बल्कि अंतःकरण की दिव्य अग्नि है। मनुष्य के अंदर अग्नि तत्व समत्व शक्ति के रूप में है। क्रियायोग साधना के द्वारा स्वरूप में समत्व की स्थापना, अग्निहोत्र करना है जिससे मानव स्वरूप ज्ञान की दिव्य ज्वाला से पावन हो जाता है। ऐसी अवस्था में स्वरूप में अनंत आनंद व अलौकिक शक्ति प्रकट होती है जिसे अग्निहोत्र में स्वाहा के रूप में वर्णित किया गया है।

"स्वाहा"

' स्व' में लीन होने पर प्राप्त अनंत आनंद का प्रतीक

" स्वाहा" शब्द 'स्व' और 'आहा' के संयोग से बना है। स्व तथा स्वरूप में एकाग्रता के द्वारा रात से अनंत आनंद की

आह्लादकारी अनुभूति को आहा के रूप में वर्णित किया जाता है। इस प्रकार स्वाहा, स्व मे लीन होने पर प्राप्त अनंत आनंद की अवस्था को व्यक्त करता है। क्रियायोग का ज्ञान लुप्त होने पर जब मनुष्य वास्तविक अग्निहोत्र व उससे प्राप्त शाश्वत आनंद को विस्मृत कर गया तो वह उसका प्रतीकात्मक अभ्यास आग जलाकर तथा उसमें घी, आदि डालकर और शाब्दिक स्वरूप में स्वाहा, स्वाहा बोलकर करने लगा। किसी भी पूजा पद्धति का प्रतीकात्मक अभ्यास गलत नहीं है परंतु प्रतीकात्मक अभ्यास बच्चों के खेल की तरह है, जिससे सत्य की अनुभूति संभव नहीं है। आज आवश्यकता है कि हम क्रियायोग साधना के द्वारा पूजाओं, साधनाओं आदि के प्रतीकात्मक स्वरूप में निहित सत्य का साक्षात्कार करें।